अंक-5, जुलाई 2024

पर्यावरण संवाद

प्रकृति एवं देशज संस्कृति के संरक्षण और संवर्द्धन के लिए

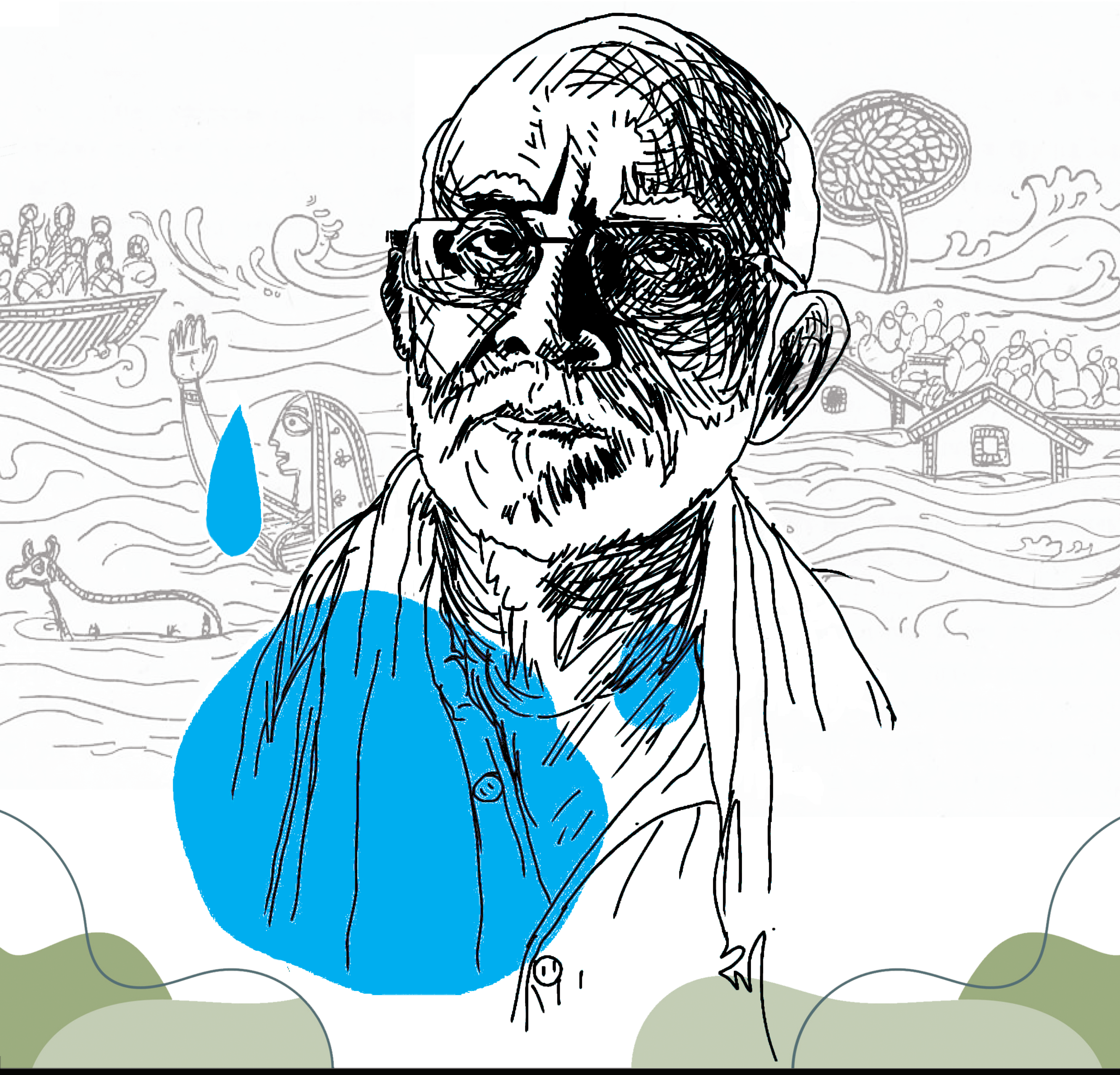

नदी-संस्कृति साधक रणजीव को आखिरी सलाम!

विचारों से वाम मार्गी समाजवादी, व्यवहार से गांधीवादी

- निराला बिदेसिया

रणजीव, समाजवादी और जनवादी मिजाज की वजह से उनका मन रहता कि लोग उन्हें सिर्फ रणजीव नाम से ही संबोधित करें। पर, ऐसा हो नहीं पाता था। लोग 'जी' लगा दते। उनकी सहजता, उनका व्यवहार, उनके नाम में स्वत: 'जी' लगवा देता था। हम सब उन्हें 'रणजीव भइया' कहते थे।

पत्रकारिता के दूसरे चरण में तहलका से जुड़कर पटना पहुंचा। वहां लोगों से परिचय बनाना शुरू किया। आरंभिक दिनों में जिन लोगों से मुलाकात हुई, उनमें रणजीव जी प्रमुख थे। बात-मुलाकात से रिश्ता परिचय में बदला और फिर आत्मीयता में। अनेक विषयों पर मतभेद, उनकी अनेक आदतों से नाराजगी या नापसंदगी के बावजूद, यह कैसे और क्यों हुआ, इसका सही कारण मालूम नहीं।

रणजीव जी से अक्सर पटना के इनकम टैक्स गोलंबर के चाय दुकान पर मुलाकात होती। चाय पीते हुए हम घंटों बात करते। शुरुआत में वह हार्डकोर आदर्शवाद की कल्पना करते थे। यहां तक कि प्रकाशित रिपोर्ट पर भी वह आदर्शवाद को केंद्र में रखकर ही टिप्पणी करते।

यह हार्डकोर आदर्शवाद अनायास किसी में नहीं आ सकता। इसके लिए गांधी या लोहिया के रास्ते को अपनाना पड़ता है। साधन और साध्य की पवित्रता को साधने क्षमता चाहिए होती है। कथनी और करनी में एका, के रास्ते चलना पड़ता है। व्यावहारिक जीवन में इसे आत्मसात करना नामुमकिन सा होता है। पर, जितना रणजीव को जाना, समझा, उससे हमेशा अहसास हुआ कि वह निजी जिंदगी में, व्यावहारिक जिंदगी में भी इन रास्तों पर चलने की कोशिश करते रहे।

रणजीव जी से परिचय हो चुका था। उनसे बात होती थी। मेरे पास 'जब नदी बंधी' किताब की प्रति भी थी। पर, मैं तब तक उस किताब में रणजीव जी की भूमिका से परिचित नहीं था। ना उन्होंने कभी बताया। जबकि उनसे जब बात होती तो नदियों पर अक्सर ही चर्चा होती थी।

कुसहा त्रासदी कोशी प्रलय के बाद 'जब नदी बंधी' को एक बार फिर से पलटा, तो रणजीव जी का नाम देखा। उनसे पूछा कि इस किताब में तो आप ही प्रमुख हैं। पर, कभी आपने बताया नहीं। वह कुछ नहीं बोले। मुस्कुराकर रह गये। सिर्फ इतना ही कहें कि अतीत प्रेरणा और सबक लेने की चीज है। उसकी उतनी ही भूमिका है। कोई काम करके फिर उसे ही जीवन भर नहीं बताते रहना चाहिए। यह करने से इंसान अतीत से प्रेरणा या सबक लेने के बजाय अतीतजीवी हो जाता है। हमलोग नदी के लोग हैं। प्रवाह में रहनेवाले। 'जब नदी बंधी' नाम किताब बिहार में कोशी और उस बहाने नदियों की स्थिति समझने के लिए पहली सबसे प्रामाणिक किताब है। इस किताब को तैयार करने में रणजीव जी ने गहन शोध-संधान किया था।

रणजीव जी का मन कोशी में रमा रहता था। विचारों पर वाम और समाजवाद, दोनों का प्रभाव था, पर रहते गांधीवादी की तरह थे। भारतीय सनातन फकीर की तरह। स्वाभिमान के साथ। तमाम मुश्किलों को झेलने के बावजूद किसी से मांगना नहीं। किसी से मुंह नहीं खोलना। कई बार ऐसा हुआ, जब पूरा का पूरा दिन वह चाय पर गुजारते थे।

पटना में उनके किराये वाले कमरे पर एक बार गया। देखा, अखबारों का ढेर है।

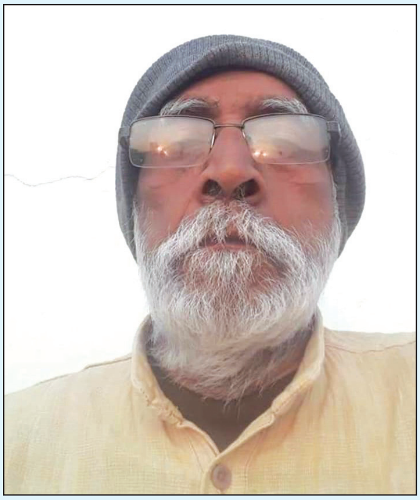

वह कई अखबार लेते थे। हिंदी, अंग्रेजी मिलाकर। आर्थिक तंगी के बावजूद अखबारों को लेकर एक नशा था। उनसे कहा कि इतनी अखबार पढ़ नहीं पाते, तो लेते क्यों है? वह कहते, जीवन में यही एक शौक या नशा है , इसे भी कैसे छोड़ दें।

बीच में जब पटना गया, उनसे मुलाकात हुई। एक संगीत आयोजन में हम मिले। उन्होंने कहा कि हमारी इच्छा है कि एक नदी संगीत यात्रा निकले। नदियों को लेकर गीतों के माध्यम से जागरूकता हो। यह कैसे होगा, पता नहीं, पर इच्छा है, इसलिए आपसे कह रहा। मैंने कहा, आप गीत दीजिए। उन्होंने एक गीत के बोल सुनाये— गंगा में मिलई ना मछरिया हो रामा, केना के दिनवा जइतई रे... इस गीत के बारे में उन्होंने समझाया। यह फरक्का की पीड़ा का गीत है। फरक्का ने गंगा को रोककर गंगा पर आश्रित लोगों, गंगा किनारे वालों को तबाह कर दिया है। फिर गीत की बात पीछे छुट गयी। फरक्का लेकर बात होने लगी। ऐसे ही थे रणजीव जी। एक बात निकल जाए तो उसमें डूब जाते थे। इस कदर डूबते थे कि फिर खाना, पीना तक भूल जाते थे। ■

विषय क्रम

संपादक
घनश्याम

संपादक मंडल
उदय
अबरार ताबिन्दा
पूनम रंजन
सीमांत सुधाकर
महेश मिश्रा
तहा सैफुद्दीन
सालगे मार्डी
कोर्दुला कुजुर
ऐनी टुडू
श्रावणी
शशि बारला
मति मुर्मू

संवाद सूत्र
मालती कुमारी
अश्विनी महाराणा
संजय समीर एक्का
आनंद मरांडी
कुंदन कुमार भगत
सीमा
सुशीला हेम्ब्रम
मनीला बास्की

कला संपादक
शेखर

आवरण चित्र
सीताराम

साज-सज्जा
जमील, राकेश व जावेद

संपादन कार्यालय
पर्यावरण कक्ष "संवाद" 52 बीघा,
मधुपुर, झारखण्ड
की ओर से प्रकाशित
मुख्य कार्यालय
'संवाद', 104/A उर्मिला इन्क्लेव,
पीस रोड, राँची - 834001
www.samvad.net

घनश्याम द्वारा संपादित एवं प्रकाशित तथा
आई.डी.पब्लिशिंग, राँची द्वारा मुद्रित
सीमित प्रसार

- **सच से साक्षात्कार**
  बाढ़ नियंत्रण की कोशी यात्रा - **रणजीव** 5

- **एक साधक**
  रणजीव! सचमुच "रणजीव" निकला - **घनश्याम** 8
  रणजीव भाई की पहली मुलाकात ने ही मुझे जीत लिया - **गुलाब चन्द्र** 9

- **चिंता सहचिंतन**
  जीवन जिनका रण जैसा : रणजीव थे वैसा - **सुनील झा** 10

- **सहयात्री**
  रणजीव मेरे : गुन न हेरानों, गुन ग्राहक हेरानों है - **दिनेश मिश्र** 11

- **नदी संस्कृति**
  रणजीव से जाना : नदी संस्कृति है, जीवन दृष्टि है - **ललन** 13

- **नदी के पहरुए**
  नदी और समाज के सच्चे साधक थे रणजीव! - **महेन्द्र यादव** 14

- **सबक और सवाल**
  रणजीव का जीवन: एक सबक़ भी और सवाल भी - **योगेन्द्र** 16

- **कालजयी कलमकार**
  जब नदी बंधी वाले रणजीव - **पुष्यमित्र** 18

नदी संस्कृति के साधक थे रणजीव

रणजीव गुपचुप चला गया। वह रणजीव हमसबों को छोड़ चला गया जिसने होश संभालते ही नदियों की रहनुमाई शुरू कर दी थी। पिछले 40 सालों से नदियों को बचाने का पहरुआ बना हुआ था रणजीव! रणजीव नदी-संस्कृति का संवाहक था। कोशी की गोद में खेला था और गंगा-दामोदर की किलकारियों के बीच चक्कर लगाते हुए इन्हें बचाने की पहरेदारी कर रहा था। बिहार से लेकर झारखंड की नदियों को मार देने की साजिश को वह बेनकाब कर रहा था। बड़े बांध और तटबंध का वह विरोधी था। लेकिन महज विरोध नहीं, बल्कि सृजनात्मक संस्कृति का सहचर था रणजीव! उसके भीतर की कलात्मकता अगर देखनी-परखनी हो तो "जब नदी बंधी" किताब की साज-सज्जा से परखा जा सकता है। वही रणजीव एक 'रणजीवी' की तरह गुपचुप चला गया। और बाद में दोस्तों परिजनों को हाथ लगी रणजीव की सड़ी-गली लाश! ठीक उसी तरह की लाश जैसी बाढ़ों में गंधाती, दुर्गंध फैलाती लाशें मिलती हैं। गुमनाम लाशें!

रणजीव को अपने जीवन की चिंता नहीं थी। वह एक साधक की तरह नदियों को बचाने की साधना कर रहा था और एक साधक की तरह समाज को हिदायत दे रहा था कि नदियां नहीं बचीं तो इंसान भी नहीं बचेगा, प्राणी भी नहीं बचेंगे।

उस साधक के लिए अभी बस इतना ही कि रणजीव! तुम हमसबों के बीच जिंदा रहोगे तबतलक जबतलक नदियों का प्रवाह प्रवाहित होता रहेगा। नदियां कलकल छलछल बहती हुई "जब नदी बंधी" जैसी कलात्मक पुस्तक सिरजने को अभिप्रेरित करती रहेंगी। तुम्हारी साधना पर हमसब गौरवान्वित हैं लेकिन तुम्हारी जिस तरह मौत हुई उससे हमसब शर्मिंदा हैं।

अलविदा दोस्त! तुम्हें सलाम और हूल जोहार!!

घनश्याम

बाढ़ नियंत्रण की कोशी यात्रा

रणजीव अब हमारे बीच नहीं रहे। लेकिन अपने जीवन में उन्होंने एक कालजयी किताब लिखी। इस किताब का नाम है- "जब नदी बंधी"। यह पुस्तक 1994 में छपी थी। जयप्रभा अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्र मधुपुर (झारखंड) की ओर से यह छापी गई थी। सर्वश्री हेमंत और रणजीव इसके संपादक थे।

इस किताब के दूसरे अध्याय में "बाढ़ नियंत्रण की कोशी यात्रा" का विस्तृत वर्णन है। इस अविराम यात्रा के अतीत और वर्तमान (1990 तक की यात्रा) को रणजीव ने बड़ी गंभीरता और बारिकी से समेटा है। इस अध्याय के तीन उपशीर्षक हमने "पर्यावरण संवाद" में समाहित किया है। इसे पढ़कर पाठकवृंद न सिर्फ कोशी की समस्या की जमीनी सच्चाई को समझ सकेंगे बल्कि समाधान की दूर दृष्टि भी विकसित कर सकेंगे। इसके साथ यह भी कि रणजीव न सिर्फ नदी विशेषज्ञ थे बल्कि संपूर्ण पर्यावरण के संजाल को बड़ी पैनी नजर से देखते और समझते थे।

आज वे हमारे बीच नहीं रहे यह जितना बड़ा सच है उससे बड़ा सच यह है कि उन्होंने कालजयी रचना को दुनिया के सामने लाकर इस बहकती दुनिया को पटरी पर लाने की एक दृष्टि और दिशा प्रदान की है- संपादक

बड़े बांधों का मिथक

कोशी सिर्फ एक नदी का नाम नहीं है बल्कि यह एक प्रतीक भी है। यह प्रतीक है बिहार में आजादी के बाद शुरू हुई तमाम बाढ़ नियंत्रण परियोजनाओं का जो आज भी कोशी की तरह उच्छृंखल और दृष्टिहीन हैं।

बड़े बांधों से बाढ़ रोक लेने का हल उत्तर बिहार की बाढ़ समस्या के संदर्भ में सबसे पहले कोशी की बाढ़ समस्या के लिए सुझाया गया था। स्वतंत्रता से पूर्व कई बार कोशी पर बड़ा बांध बनाने के तकनीकी निर्णय हुए। परन्तु, उन दिनों बाढ़ नियंत्रण के उपायों पर चली बहसों के कारण अंततः इन तकनीकी फैसलों की नींव में अमल का' गारा नहीं डाला जा सका। प्रथम पंचवर्षीय योजना के दौरान जब कोशी तटबंध परियोजना के लिए मिट्टी पड़ने लगी, तब उत्तर बिहार की दूसरी अन्य नदियों के बाढ़ नियंत्रण के लिए भी कोशी परियोजना का अनुकरण शुरू हुआ और बड़े बांधों का विचार ठंडे बस्ते में डाल दिया गया। इस प्रकार उत्तर बिहार की बाढ़-मुक्ति के संदर्भ में बड़े बांधों के निर्माण की परिकल्पना आजादी पूर्व का एक स्वप्न बन कर रह गयी।

बाढ़ नियंत्रण के लिए बड़ा बांध बनाने में यह हिचक आगे भी बनी रही है। आजादी के बाद विभिन्न जल संसाधन विकास परियोजनाओं के तहत देश में सैकड़ों बड़े बांध बनाये गये। किन्तु, उनमें बाढ़ नियंत्रण के उद्देश्य से बने नये बड़े बांधों की संख्या बहुत कम है। सिर्फ बाढ़ नियंत्रण के उद्देश्य से तो एक भी बड़ा बांध नहीं बनाया गया। हालांकि, केन्द्रीय जल आयोग बड़े बांधों के लाभकारी गुणों में सिंचाई और पनबिजली उत्पादन के साथ बाढ़ नियंत्रण को भी बराबरी का दर्जा देता है। पिछले दशक तक देश में डेढ हजार से अधिक बड़े बांध बने हैं, पर उनमें सिर्फ 17 बड़े बांध सिंचाई और पनबिजली उत्पादन के साथ बाढ़ नियंत्रण के लिए भी बनाये गये हैं। बिहार में सातवीं पंचवर्षीय योजना तक 231 बड़ी एवं मध्यम परियोजनाओं की रूपरेखा सामने आयी है। इनमें से करीब 43 बड़े बांधों की परियोजनाएं है। सिंचाई, पनबिजली के साथ साथ बाढ़ नियंत्रण के उद्देश्य से दक्षिण बिहार में चार बड़े बांधों की दामोदर घाटी परियोजना इन सब में ऐसी प्रमुख और अकेली परियोजना है,

जिसका निर्माण पूरा हो चुका है। 1948 में यह परियोजना आरंभ हुई थी और 1959 में इसके चौथे और अंतिम बांध "पंचेत बांध" का निर्माण पूरा हुआ। इस श्रृंखला के पहले बांध "तिलैया डैम" का निर्माण 1954 में पूरा हुआ था। यानी बाढ़ नियंत्रण के लिए बड़े बांधों के इस्तेमाल का 36 साल का अनुभव आज हमारे सामने है।

बड़े बांधों की अवधारणा पर आज देश के लगभग हर इलाके में सिर्फ उसके विनाशकारी परिणामों के संदर्भ में ही नहीं, बल्कि उसके निर्माणगत उद्देश्यों की सफलता-विफलता पर भी गंभीर और तीखी बहसें चल रही है। अनुभवों से विकसित इन बहसों ने बड़े बांधों द्वारा बाढ नियंत्रण पर कई महत्त्वपूर्ण आपत्तियां खड़ी की हैं। नदियों की सामान्य बाढ़ की तुलना में बांधों के टूटने, रिसने से आने वाली बाढ़ों के कारण कई गुना ज्यादा लोग मारे जाते हैं और बहुत अधिक सम्पत्ति का नुकसान होता है। बड़े बांधों से पैदा होने वाली दलदल और जलजमाव की कीमत बाढ़ नियंत्रण से मिली राहत की तुलना में ज्यादा होती है। नदियों की गाद बांधों के जलाशयों में रह जाती है, जिससे कृषि भूमि की उर्वरता घटने लगती है। इसके अतिरिक्त कई नई बीमारियां और कृषि भूमि में लवण एवं क्षारीय तत्व बढ़ने की समस्या पैदा होने का खतरा हो जाता है।

कोशी नियंत्रण पर आरंभिक विचार-विमर्श के समय जब इसके लिए बड़ा बांध बनाने का सुझाव दिया गया था, तब उस पर काफी चर्चा हुई थी। किन्तु, आज देश में बड़े बांधों के अनुभवों से विकसित बहस के बावजूद एक सन्नाटे की-सी स्थिति में उत्तर बिहार के लिए बड़े बांधों की मांग हो रही है। उत्तर बिहार में बाढ़ की खास परिस्थितियों के संदर्भ में बड़े बांध के औचित्य पर कोई बहस नहीं चल रही है। 50 वर्ष पुराने तकनीकी फैसले को लागू करने का राग अलापा जा रहा है। पिछली आधी शताब्दी में हुए तकनीकी विकास के आलोक में बाढ़ नियंत्रण के इस समाधान पर न कोई पुनर्चिन्तन चल रहा है और न ही संवादहीनता की स्थिति में किसी गलत परिणाम पर पहुंचने की आशंका से इस पर पुनः विचार-विमर्श करने की जरूरत महसूस की जा रही है।

पीली नदी का प्रपंच

उत्तर बिहार की वर्तमान दुर्गति के लिए तटबंध निर्माण का वह गलत राजनीतिक फैसला मुख्य तौर पर जिम्मेवार है, जो स्वतंत्रता पूर्व की तटबंध विरोधी बहस को नकार कर लागू किया गया था। इस फैसले को लागू करने के लिए मात्र तकनीकी तथ्यों को ही नहीं तोड़ा-मरोड़ा गया बल्कि, इसकी पूरी भूमिका प्रपंच और कपट की बुनावट से तैयार की गई।

कोशी नियंत्रण के लिए तटबंधों वाली परियोजना को जब केन्द्रीय सरकार 1954 में अंतिम स्वीकृति दे रही थी, तब इस परियोजना के औचित्य को उपयोगी सिद्ध करने के लिए केन्द्रीय सरकार ने अपने दो विशेषज्ञों डा० के. एल. राव और श्री कंवर सेन को चीन भेजने का नाटक किया था। कोशी की तरह "चीन का शोक" कही जाने वाली वांग-हो नदी (पीली नदी) पर तटबंध बनाकर इसकी बाढ़ विभीषिका को रोकने की कोशिशें चीन में सैकड़ों साल से चल रही थी। इन दोनों विशेषज्ञों को चीन की इस बाढ़ नियंत्रण परियोजना का अध्ययन करके कोशी की तत्कालीन बाढ़ नियंत्रण परियोजना पर तकनीकी राय देने का दायित्व सौंपा गया था।

लेकिन ये दोनों विशेषज्ञ जब चीन से लौटकर आये तो वहां पीली नदी के क्षेत्रों में उन लोगों ने जो कुछ देखा-परखा था, वैसा आँखों देखा बयान यहां नहीं दिया। पीली नदी की बाढ़ नियंत्रण परियोजना के कई महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर ये लोग चुप्पी साधे रहे। इन विशेषज्ञों के कंधे पर तत्कालीन राजनीति इस कदर सवार थी कि तकनीकी ज्ञान को राजनीति का अनुगामी बनना पड़ा। कोशी परियोजना पर अपनी तकनीकी राय में इन विशेषज्ञों ने कहा "चीन की पीली नदी के तटबंधों में रख-रखाव तथा किनारों की निगरानी की समस्या है। इन तटबंधों में समय समय पर दरारें पड़ी है। फिर भी वे सदियों से सक्षम हैं। पीली नदी अपनी साद का बहन कोशी नदी के मुकाबले अधिक सुगमता से करती है क्योंकि इसके साद-कण कोशी की साद के तुलना में महीन होते है। कोशी की साद बहुत ज्यादा परेशानी नहीं प्रस्तुत करेगी,

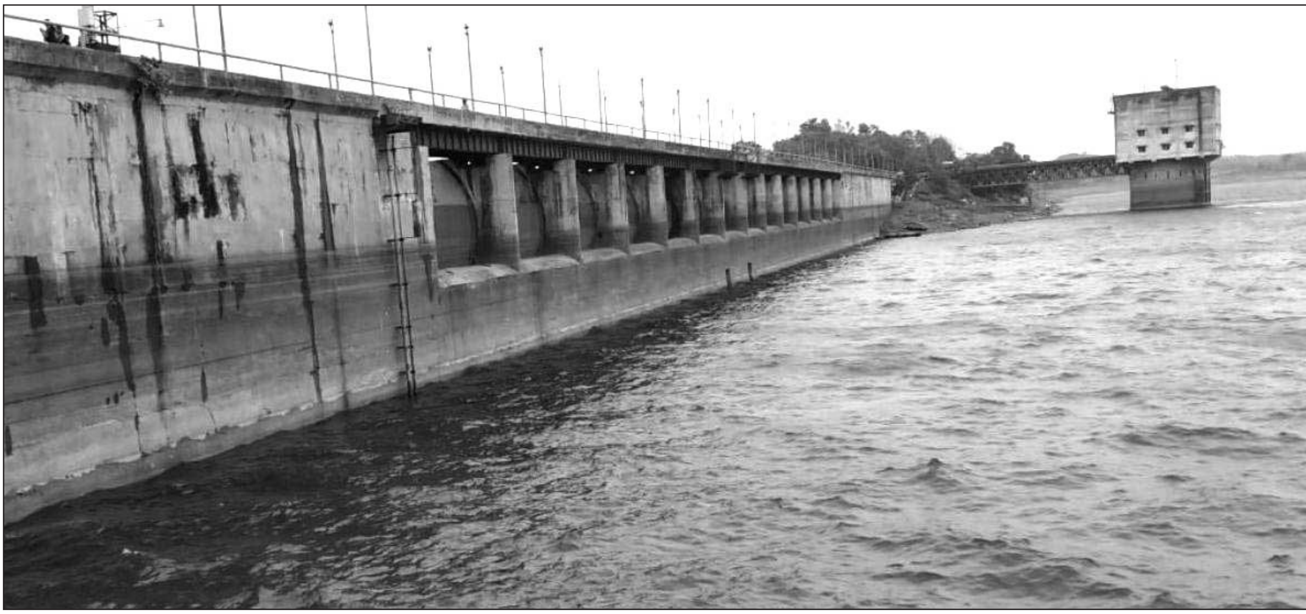

सिर्फ इसके मोटे कणों को अलग करने की व्यवस्था करनी होगी। यदि पीली नदी अपनी साद को सुगमतापूर्वक समुद्र तक ले जा सकती है, तो कोई वजह नहीं कि कोशी को काबू में लाने की ऐसी ही व्यवस्था नहीं की जा सकती। ऐसी व्यवस्था संभव है, जिससे कोशी अपनी साद को बहा ले जाय, जिसके कारण नदी की धारा में अक्सर विस्थापन होता है। अतः कोशी तटबंधों का निर्माण बराज निर्माण से भी पहले तुरंत करना चाहिए।"

डा० के.एल. राब और कंवर सेन की इस सिफारिश से कोशी की तटबंधों वाली बाढ़ नियंत्रण योजना पर तकनीकी मुहर लगी और उसी परियोजना का क्रियान्वयन भी हुआ। लेकिन जनता को धोखे में रखा गया। क्योंकि, "पीली नदी पर तटबंधों द्वारा बाढ़ नियंत्रण की वह तस्वीर अधूरी थी जिसका जिक्र इन विशेषज्ञों ने कोशी योजना से संबंधित सिफारिशों के समर्थन में किया था।

पीली नदी का पागलपन

पीली नदी के इलाके में बाढ़ नियंत्रण की असली तस्वीर कुछ और थी। हमारे विशेषज्ञों के चीन जाने तक पीली नदी के तटबंधों में कम से कम 1500 बार दरारें पड़ चुकी थी। 1045 ई० से 1954 ई० के बीच 906 वर्षों में कम से कम 9 बार नदी की धारा में वृहद् परिवर्तन हुआ। वैसे, कुल मिलाकर 26 बार इसकी धारा परिवर्तित हुई थी। सिर्फ, 1955 तक के 100 वर्षों में इस नदी के तटबंध कम से कम 200 बार टूटे थे। अकेले 1933 के बाढ़ के समय पीली नदी के तटबंध कम से कम 50 जगहों पर टूटे थे। इसके कारण लगभग 11000 वर्ग कि.मी में बाढ़ का भयंकर प्रकोप हुआ। 136 लाख 40 हजार लोग बाढ़ से प्रभावित हुए और करीब 18,000 लोग मौत के शिकार हुए।

1955 में प्रकाशित चीन की एक सरकारी रिपोर्ट में पीली नदी को बाढ़ समस्या के बारे में यह जानकारी दी गई है कि पीली नदी में बाढ़ की असाधारण विभीषिका का कारण बारिश नहीं है बल्कि नदी के मुहाने पर साद-गाद का अत्याधिक जमाव है। उत्तरी चीन के पीले मैदान से पीली नदी हजारों किलोमीटर की मात्रा के दौरान अपने प्रवाह में काफी बड़ी मात्रा में साद समेट कर लाती है। लेकिन, समुद के किनारे से लगभग 800 कि.मी. पहले जमीन का ढाल सपाट होने के कारण नदी के प्रवाह में बह कर आयी साद समुद्र में न जाकर नदी तल में जमा होने लगती है। नतीजतन नदी तल हमेशा ऊंचा होता रहता है और नदी उथली होकर हमेशा धारा परिवर्तन करती रहती है। मुहाने पर लगातार बढ़ते साद जमाव के कारण निचले इलाकों में बाढ़ का प्रकोप अधिक विनाशकारी होता है। साद जमाव से तटबंधों के बीच में नदी का तल तटबंधों की बाहर की जमीन से ऊंचा हो गया है। कुछ स्थानों पर नदी तल आसपास की जमीन से 10 मीटर ऊपर है।

चीन के विदेशी भाषा विभाग से प्रकाशित इस रपट में पीली नदी की बदहाल बाढ़ नियंत्रण परियोजना के बारे में यह स्वीकारोक्ति दर्ज है कि साद का इतना अधिक जमाव, तटबंधों को ऊंचा करके या उन्हें और मजबूत करके नहीं रोका जा सकता। तटबंध जितने ऊंचे और मजबूत होते जायेंगे, साद का जमाव उतनी ही तेजी से बढ़ेगा, क्योंकि साद के बाहर जाने के सारे रास्ते बंद हो जाते हैं। इस प्रकार हम अपने ही जाल में फंसते जाते हैं और बाढ़, तटबंध टूटना, नदी का धारा परिवर्तन आदि कई खतरे हमारा पीछा नहीं छोड़ते। ■

रणजीव! सचमुच "रणजीव" निकला

- घनश्याम

पहली बार जब मेरी मुलाकात रणजीव से हुई थी और अपने परिचय में उसने अपना नाम रणजीव बतलाया तो मैंने कहा था- "रणजीत (!)। उसने मुझे सुधारते हुए कहा था रणजीत नहीं भाई, "रणजीव"! मैं मन ही मन बुदबुदाया – रणजीव! रणजीव! उसने मुझे विश्वास दिलाते हुए कहा – भाई रणजीव ही है मेरा नाम! 'रण में जीने वाला' यानी "रणजीव"।

लगभग 48 वर्ष से हमारी और उसकी दोस्ती थी। पिछले कुछ वर्षों से मिलना जुलना कम हो पा रहा था। खासकर तब से जब से झारखंड बना था। समय के अभाव और कार्यों की व्यवस्था ने फिजिकल डिस्टेंस जरूर बढ़ा दिया था लेकिन आत्मीयता पहले जैसी ही थी। हम दोनों के बीच संवाद सूत्र का काम विनोद रंजन किया करते थे। पिछले साल के प्रारंभ में विनोद ने जानकारी दी थी कि रणजीव गंभीर रूप से बीमार हैं और माले कार्यालय के कमरे में रह रहे हैं। मैं उससे मिलने वहां पहुंचा। पहली नजर में तो पहचान ही नहीं पाया। कृशकाय शरीर और लंबी दाढ़ी को देख प्रभात कुमार शांडिल्य याद आ गए। जब नजदीक गया तब रणजीव को पहचान पाया। मिलने पर नमस्कार पाती हुई। आवाज में अभी भी पुरानी खनक थी। लंबी चर्चा होती रही। उसने कहा अब लगभग ठीक हूं। लेकिन बातचीत के क्रम में उसको अपनी चिंता कम कायनात और नदियों की चिंता ज्यादा थी। नेपाल में वहां की प्रकृति और नदियों के साथ जो खिलवाड़ चीन कर रहा है इसका दुष्परिणाम भविष्य में भारत को भुगतना पड़ेगा, को लेकर वह चिंतित दिखा। बीमारी की अवस्था में भी प्रकृति

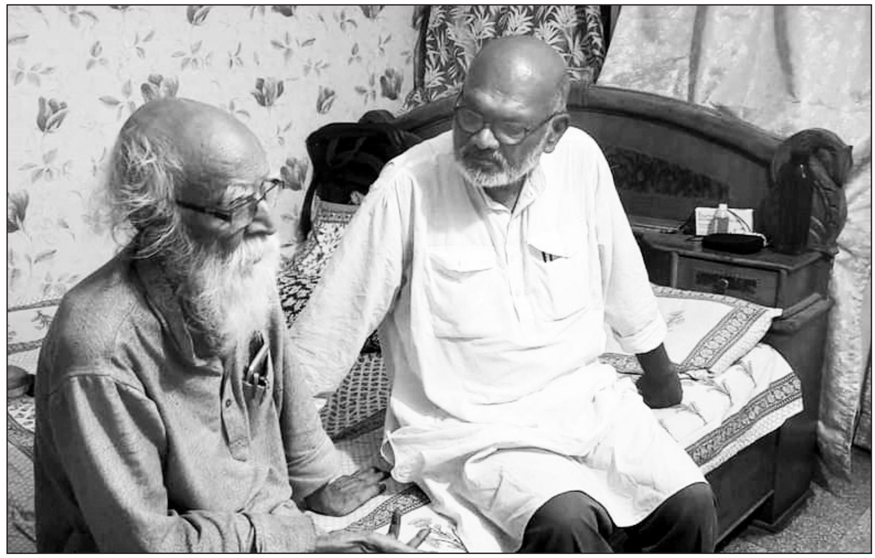

और नदियों को बचाने की चिंता करना यह दर्शाता है कि पर्यावरण के प्रति वह कितना संवेदनशील और सरोकारी था। सच तो यह है कि अपने विचारों के प्रति जितना प्रतिबद्ध था, अपने सेहत के प्रति उतना ही लापरवाह! रणजीव को हमने न तो समय पर खाते देखा और न समय पर उठते। समय पर लिखना और लिखकर जिम्मेदार व्यक्ति को सौंपना उसकी फितरत में था ही नहीं। अधिक से अधिक परफेक्ट लेखन और शब्दों के चयन के प्रति काफी सजग लेखक था रणजीव! एक फोल्डर लिखने के लिए कई कई रात वह व्यतीत कर देता था। न खाने-पीने की सुध रहती थी न नहाने धोने की!! लेकिन जब मन के लायक लिखकर उठता था तब उसके चेहरे की चमक देखते बनती थी। अद्भुत था वह व्यक्ति! और अकल्पनीय था उसका व्यक्तित्व!!

एक बार की घटना मुझे याद है। जयप्रभा अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्र ने यह निर्णय लिया कि "जब नदी बंधी" के लिए फोल्डर रणजीव तैयार करें। पहले तो उसने नाकुर-नुकुर की। काफी अनुनय-विनय के बाद वह लिखने को तैयार हुआ। लगभग 500 शब्दों के उस फोल्डर को तैयार करने में उसे 15 दिन लग गए। टीम के साथी इतने विलंब के लिए चिढ़ते-कुढ़ते रहे। वह लिखता और फाड़ता रहा। लेकिन ठीक 15वां दिन जब वह लिखकर निकला और उस फोल्डर के मजबून साथियों को सुनाया तो सभी मंत्र मुग्ध हो गए। कसी हुई भाषा। आकर्षित करने वाले वाक्य तथा दिल को छू देने वाले कंटेंट को पढ़-सुनकर सभी उछल पड़े। साथी विश्वनाथ ने कहा – ये हुई न बात! निश्चित तौर पर इस फोल्डर को जो एक बार पढ़ लेगा वह किताब खरीदने की अग्रिम राशि जरूर भेजेगा। और विश्वनाथ की यह बात सच साबित हुई। लगभग दो महीने में 1200 लोगों की अग्रिम राशि हमलोगों के पास आ गई। यानी लगभग 48 हजार रुपए उस फोल्डर के चलते हमलोगों के खाते में जमा हो गए। यह था रणजीव की लेखनी का कमाल! हमलोगों के जीवन में यह पहली किताब थी जिसके छपने के पहले फोल्डर

के कंटेंट को पढ़कर लोगों ने हाथों हाथ उठा लिया। लोगों का उत्साह, प्रेम और विषयवस्तु के प्रति लगाव को देख हम सब इतना उत्साहित हुए कि किताब को दिल्ली के प्रेस में छपवाने का निर्णय ले बैठे। हम तीन साथी (रणजीव, विश्वनाथ और घनश्याम) पांडूलिपि लेकर दिल्ली पहुंच गए। गांधी शांति प्रतिष्ठान में कुछ दिन रुके लेकिन वहां का रूम भाड़ा लंबे समय तक दे पाना संभव नहीं था। हम सब साथी अनिल चौधरी (जो उस समय प्रिया नामक संस्था के प्रमुख पदाधिकारियों में थे) की कृपा से वाणी नाम नेटवर्क के अतिथि कक्ष में रुके। सिर्फ भोजन का खर्च हम सबों को वहन करना पड़ा जिसकी व्यवस्था अनिल और उनके साथी अपने पाकेट से कर दिया करते थे। "जब नदी बंधी" को छपवाने के लिए कई प्रेस से संपर्क साधा गया। लेकिन अंततः रणजीव को वह प्रेस और उसकी छपाई पसंद आई, जहां अनुपम मिश्र की किताब छपा करती थी। जितने प्रेस को हम सबों ने देखा उनमें यह प्रेस सबसे महंगी छपाई करने वाला प्रेस था। उस प्रेस में छपा पाना संभव नहीं था क्योंकि अग्रिम भुगतान करने की उतनी राशि हमलोगों के पास नहीं थी। इसलिए एक दूसरे प्रेस में छपवाने का निर्णय हमसबों ने लिया, जहां कुछ राशि की अग्रिम भुगतान और अनिल चौधरी की क्रेडिट पर एक प्रेस ने किताब छापना स्वीकार लिया। आधे मन से ही सही रणजीव को हमसबों का प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा। अंतिम निर्णय के बाद मैं दिल्ली से लौट आया। साथी रणजीव और विश्वनाथ वहां रह गए। पूरी किताब को अंतिम रूप देने में लगभग तीन महीने लग गए। एक समय ऐसा भी आया कि लगा हम सब किताब को नहीं निकाल पाएंगे। लेकिन साथियों और पाठकों का अग्रिम भुगतान हम सबों के सिर चढ़कर

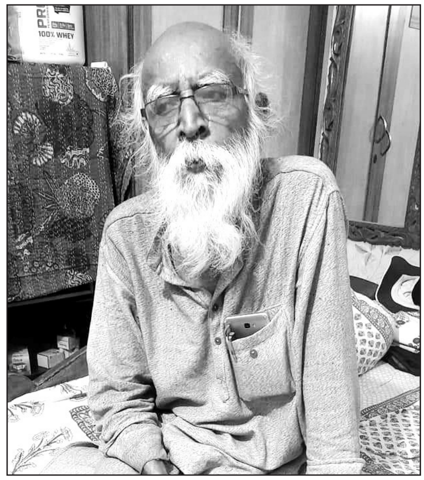

बोल रहा था। इसलिए किसी भी स्थिति में किताब निकालनी ही थी। और सच कहूं तो यह कहना ही पड़ेगा कि अगर अनिल चौधरी जैसे सहृदय और संवेदशील दोस्त नहीं होते तो हमसबों को यह निर्णय स्थगित करना पड़ता। लेकिन उसके अदम्य उत्साह और समर्थन के कारण ही 'जब नदी बंधी' छप सकी। लेकिन छप कर आई तो मत पूछिए- किताब की साज-सज्जा, फांट का चयन और कवर के रंग और प्रस्तुति को देख सभी साथी झूम उठे। अपनी आंखों और लेखनी पर ही हमसब लोगों को भरोसा नहीं हो रहा था कि इस तरह का अकल्पनीय और मनमोहक काम रणजीव कर सकते हैं। पूरी टीम ने रणजीव को सधुवाद दिया। और देखते ही देखते 3000 किताबें बिक गईं। यह वाकया 1994 का है। सजिल्द किताब की कीमत ₹100 और पेपर बैग ₹60 थी। इस एक किताब ने रणजीव को नदियों का विशेषज्ञ बना दिया और रणजीव सचमुच 'रणजीव' साबित हुए। बाढ़, सुखाड़ और बड़े बांध- तटबंध के 'रण' में जीने वाला इंसान रणजीव साबित हुआ। और जीवन के अंतिम यात्रा भी एक "रणजीवी" की तरह ही की। भूख और बीमारी से संघर्ष करते हुए उसने अपने 'रण' से विदा लिया। रणजीव को हूल जोहर! ■

रणजीव भाई की पहली मुलाकात ने ही मुझे जीत लिया

- गुलाब चन्द्र

रणजीव भाई बिहार के रहने वाले थे। मेरी पहली मुलाकात मधुपुर, देवघर में हुई थी। उनके व्यक्तित्व की गहराई और व्यापकता ने पहले ही परिचय में मुझे प्रभावित कर लिया। मैंने उनको दामोदर बचाओ अभियान से परिचय करवाया था। उन्होंने कहा, "दामोदर बचाना यानी जीवन पद्धति बचाना है।" उस समय मैं उनके इस कथन का पूरा मतलब नहीं समझ पाया था।

रणजीव जी बिहार के विशेषकर कोशी क्षेत्र की समस्याओं का विश्लेषण करते हुए, कोशी की समस्याओं को पारम्परिक और भविष्य की दृष्टि से समझाते थे। उनके पास एक वैज्ञानिक दृष्टिकोण था, जिससे वे पर्यावरण और नदी संरक्षण की जटिलताओं को सरलता से समझा देते थे। उनकी बातों में एक स्पष्टता और गहराई थी, जिसने मुझे बहुत प्रभावित किया।

कोशी कंसोर्टियम की बैठकों में भगवान जी पाठक उन्हें 'नदी नॉलेज बैंक' कहते थे। यह नाम उनके ज्ञान और समझ को सही मायनों में परिभाषित करता था। रणजीव जी से मेरी मुलाकातें दो-तीन बार ही हुईं, लेकिन उनकी सहज और स्वाभाविक यथार्थवादी सोच ने नदी संरक्षण और पर्यावरण संरक्षण के प्रति मेरी समझ को गहराई दी।

रणजीव जी की यादें मेरे लिए प्रेरणा स्रोत हैं। उनके अनुभव और विचारधारा ने मेरे काम को मजबूत बनाया है।

जीवन जिनका रण जैसा : रणजीव थे वैसा

- सुनील झा

रणजीव सर के साथ मेरा पहला परिचय 2011 में हुआ, जब मैं कोशी के बांधों के बीच बसे गांवों में बच्चों की स्थिति पर एक शोध के मकसद से कुछ विशेषज्ञ लोगों से मिलना चाह रहा था। मुझे अब बहुत स्पष्ट याद तो नहीं पर उनके साथ मेरा परिचय मित्र भगवान जी पाठक जो स्वयं उत्तर बिहार की नदियों और विशेषकर कोशी क्षेत्र की गहन जानकारी रखने वालों में से हैं या फिर मित्र शिल्पी सिंह के पिता और भूमिका विहार के संस्थापक स्वर्गीय अरुण सिंह सर के माध्यम से हुई थी।

उनके बारे में जब मुझे बताया गया तो दोनों ने यही कहा कि पहले आप 'जब नदी बंधी' पढ़ लें। यह पुस्तक मुझे ढूंढें नहीं मिली, लेकिन तब तक रणजीव सर से मेरा साक्षात्कार हो चुका था और उनसे मैंने 'जब नदी बंधी' किताब लेकर उसकी एक छायाप्रति करवाकर वापस लौटा दी थी। रणजीव सर और श्री हेमंत द्वारा संयुक्त रूप से लिखित इस किताब को पढ़ने से पहले अंग्रेजी में लिखी किताबें ही ज्यादा पढ़ा करता था। इसलिए नहीं कि पढ़ना नहीं चाहता था, बल्कि जहाँ था वहाँ के विशाल पुस्तकालय में हिन्दी में कहानी और उपन्यास के अलावा पढ़ने को कुछ मिलता ही नहीं था। बाढ़, नदी जैसे विषयों पर बम्बई में रहते हुए हालांकि श्री दिनेश मिश्रा के कुछ लेख EPW में अंग्रेजी में पढ़ने को मिले थे, पर वहाँ हिंदी में ऐसा कुछ पढ़ने के लिए नहीं था। बड़े शिक्षण संस्थान हिन्दी या अन्य भारतीय भाषाओं में लिखी शोध पुस्तकों को जगह ही नहीं देते। वहाँ के रैक ऑक्सफ़ोर्ड, सेज और रौतलेज जैसे बड़े प्रकाशक जो अंग्रेजी में अपनी पुस्तकें छापते हैं, उनके लिए आरक्षित होते हैं।

'जब नदी बंधी' जैसी उच्च कोटि की पुस्तक मैं सच कहूँ तो अंग्रेजी में आज तक नहीं पढ़ी। उस पुस्तक को पढ़ने के बाद मेरा रणजीव सर के लिए सम्मान और आदर स्वाभाविक रूप से बढ़ गया। उसके बाद कई मुलाकातें हुईं। पटना में उन्होंने कई ठिकाने बदले, पर हमारी भेंट-मुलाकात होती रहीं। पर इधर चार-पाँच सालों से यह काफी कम हो चला था। चाय के दुकानों पर और घर में होने वाली भेंटें अब गोष्ठियों और सभाओं तक सीमित हो चुकी थी।

आर्थिक और स्वास्थ्य संबंधी संकटों से वह लगातार तो जूझ ही रहे थे, पर मुझे यह भी मालूम है कि कई करीबी मित्र उन्हें यद-कदा इस संकट से उबार भी रहे थे। मैं उन सभी को जानता हूँ, पर यहाँ उनलोगों का नाम लेना ठीक नहीं समझता। व्यक्ति के स्तर पर की गयी मदद की एक सीमा होती है। यह सच है कि उनकी सांस्थानिक मदद नहीं हो सकी, अगर हुई भी तो वह लम्बे समय तक नहीं हो सकी। इधर बड़े-बड़े संस्थान भी कमजोर हुए हैं। जो संस्थान पहले कार्यकर्ताओं के लिए संकटकाल में सहारा बन जाया करते थे, अब वे स्वयं 'अस्तित्व के खतरे' की चुनौती से जूझ रहे हैं। इसलिए दोष किसे दिया जाय और क्यों, यह मुझे नहीं समझ में आता, जब चार उंगलियाँ खुद मेरी तरफ ही उठी हुई हैं!

उनकी मृत्यु से करीब पंद्रह दिन पहले उनका फ़ोन आया था, यह कहकर कि आपको कॉल बैक करता हूँ, वापस उनको कॉल नहीं कर सका। इस बात की मुझे अन्दर से बहुत तकलीफ है। जब उनके मृत्यु की अन्दर से हिला देने वाली खबर मित्र महेंद्र यादव से मिली, वह बेहद परेशान करने वाली थी। मैं उस समय कलकत्ता में था और नहीं पहुँच सका। इन सब बातों का बेहद अफ़सोस होता है मुझे रह-रहकर।

बहुत जिंदादिल इंसान। उम्र में एक अच्छा-ख़ासा फासला होने के बावजूद उन्होंने कभी छुटपन का एहसास नहीं कराया। जोरदार आवाज़ वाले, खुलकर हँसने वाले रणजीव जीवन से रण में हारकर चले गए। जीवन से रण में तो खैर सभी को एक ना एक दिन हारना ही है, पर जिस तरह से वो हारे, वैसी हार किसी को ना मिले।

अलविदा रणजीव सर! आप हमेशा यादों में बसे रहेंगे। क्षमा कीजिएगा मेरी भूलों को। ■

रणजीव मेरे : गुन न हेरानों, गुन ग्राहक हेरानों है

- दिनेश मिश्र

रणजीव जी हमारे बीच अब नहीं हैं। उनका इस तरह से सबके बीच से उठ कर चले जाना बहुत ही दुःखदायी है और यह उन जैसे विचारवान व्यक्ति के सन्दर्भ में और भी महत्वपूर्ण हो जाता है जो समाज के सर्वांगीण उन्नयन के बारे में सोचते हैं, उसके लिये एक दृष्टि रखते हैं, तन-मन से पूर्णकालिक काम में इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये धन के अभाव में भी लगे रहते हैं और एक दिन बिना बताये किसी से भी कोई अपेक्षा न रखते हुए अपनी अनन्त यात्रा पर चल देते हैं।

मेरा उनसे परिचय 1984 में उस समय हुआ जब सहरसा में हेमपुर गाँव के पास कोशी का तटबन्ध टूट गया था और उससे प्रभावित 196 गाँवों के विस्थापित लोग जिनकी संख्या 4.58 लाख से अधिक थी, उजड़ कर नदी के पूर्वी तटबन्ध पर खुले आसमान के नीचे रहने के लिये बाध्य हो गये थे। हमारे एक पारस्परिक मित्र विकास भाई ने मुझे जैसे-तैसे मना लिया था कि मैं सहरसा जाकर वहाँ की स्थिति को देखूँ और इस परिस्थिति में लोगों की मदद करने के लिये क्या कुछ किया जा सकता है उस पर एक रिपोर्ट तैयार करके उन्हें दूँ ताकि वह यथाशक्ति लोगों की मदद करने का कुछ प्रबन्ध कर सकें। उन्होनें मुझे तीन लोगों के नाम सुझाये जो वहाँ मेरी मदद करेंगें। यह तीन लोग थे पंचवटी (सुपौल) के श्री सत्य नारायण प्रसाद, दुलहीपट्टी के श्री रामजी 'सन्मुख' और सहरसा शहर के श्री रणजीव जो खुद एक पत्रकार हैं। उन्होनें यह भी बताया कि पटना में ग्राम भारती-सिमुलतला के श्री शिवानन्द भाई मिलेंगे। आप उनके साथ सहरसा जायेंगे।

उस समय मैं इन लोगों में से किसी को भी नहीं पहचानता था। बाद में पता लगा कि शिवानन्द भाई के साथ श्री सत्य नारायाह प्रसाद भी हमारे साथ पटना से सहरसा जा रहे हैं। 8 अक्टूबर, 1984 के दिन सहरसा पहुँचते-पहुँचते हम लोगों को शाम हो गयी पर उसी दिन डाक बंगला चौराहे के पास एक धर्मशाला में शिवानन्द भाई ने एक मीटिंग रखी थी और हम लोग सीधे उस मीटिंग में ही पहुँचे। यहाँ सहरसा में कोशी के बाँध के टूटने और उससे पैदा होने वाली बाढ़ पर चर्चा चल रही थी जिसमें श्री रामजी 'सन्मुख' से भेंट हुई।

रणजीव जी से अगले दिन मुलाकात हुई। उन्होंने हम लोगों को वहाँ की स्थिति के बारे में बताया और यह भी कहा कि बिहार के 1974 आन्दोलन के बहुत से साथी मिल कर लोगों को मदद पहुँचाने का यथाशक्ति प्रयास कर रहे हैं पर वहाँ की स्थिति और जरूरतों के बारे में वहाँ गये बिना समझ पाना मुश्किल है। पहले आप लोग वहाँ जाकर देख आइये तभी आगे की बातचीत करने का कोई फायदा हो पायेगा। यह पूरा दिन हम लोग हेमपुर से बनगाँव तक नाव से घूमते रहे और 10 अक्टूबर को ही रणजीव से फिर भेंट हो पायी। तब सहरसा के बहुत से कार्यकर्ताओं की एक बैठक में आगे के कार्यक्रम पर बात हुई जिसमें रणजीव जी ने महती भूमिका निभायी। बातचीत में आया कि अगर संसाधन जुट सकें तो राहत कार्यक्रम चलाये जायें अन्यथा सरकार पर दबाव डाला जाये कि वह राहत कार्यों में तेजी लाये। सरकार उस समय विकट स्थिति में फँसी हुई थी क्योंकि एक तरफ कोशी के तटबन्ध में दरार पड़ी हुई थी तो दूसरी तरफ वह अराजपत्रित कर्मचारियों की अनिश्चितकालीन हड़ताल का सामना कर रही थी और जब तक यह हड़ताल समाप्त नहीं हो जाती तब-तक वह सीधे कुछ कर पाने की स्थिति में नहीं थी। तय यह हुआ कि यह समय लोगों को मदद करने का है, सरकार तो खुद फँसी है अतः यदि संसाधन जुट जाते हैं तो जितने भी लोगों के बीच सम्भव हो राहत कार्य चलाये जायें। सरकार के साथ भी वार्तालाप जारी रखा जाये।

इस बीच उस साल 31 अक्टूबर के दिन श्रीमती इन्दिरा गांधी की हत्या हो गयी

जिसकी वजह से चर्चा का रुख बदल गया और उसे के कुछ दिन बाद 2-3 दिसम्बर को भोपाल गैस काण्ड हो गया जिसकी वजह से प्राथमिकतायें बदल गयीं। जैसे-तैसे सहरसा में राहत कार्य शुरू हुए और अराजपत्रित कर्मचारी भी काम पर वापस लौट आये। कुछ स्थानीय कार्यकर्ताओं ने राहत की कमान सम्हाली। मेरे ऊपर दबाव था कि मैं इस कार्यक्रम की मॉनिटरिंग करूँ, जिसका मुझे कोई अनुभव नहीं था पर रणजीव जी जैसे मित्रों का सहयोग मिलने से यह काम हो पाया। आन्दोलन से निकले कार्यकर्ताओं ने इसमें यथासम्भव सहयोग किया यद्यपि यह काम उनकी भी पृष्ठभूमि और मानसिकता से मेल नहीं खाता था। इस कार्यक्रम में रणजीव जी का सहयोग लगातार मिलता रहा क्योंकि स्थानीय होने के नाते उनके सम्पर्क पूरे प्रभावित क्षेत्र में थे और आन्दोलनकारी होने के नाते यह सम्पर्क राज्य और देश के स्तर पर भी फैले हुए थे। उन्होनें मुझे अपने संग्रह से ललितेश्वर मलिक की लिखी कोशी नामक पुस्तक की छायाप्रति मुझे पढ़ने को दी थी जिससे कोशी परियोजना की आवश्यकता और क्रयान्वयन के शुरुआती दौर के घटनाक्रम की जानकारी मिली। उन्हीं के सहयोग से मेरा परिचय लेखक श्री महा प्रकाश (अब स्वर्गीय) जी से हो सका जो कोरोना काल के पहले तक जीवन्त बना रहा।

राहत कार्यक्रम जून, 1985 के अन्त तक चलता रहा और तब तक उनके साथ प्रायः रोज-रोज का सम्पर्क बना हुआ था और बाद में हम लोगों ने नेपाल के तराई के कोशी क्षेत्र में लगभग एक महीने तक की यात्रा की थी जिसमें मुझे खासकर बहुत कुछ जानने-सीखने का मौका मिला। कोशी क्षेत्र में काम करने का मुझे इतना फायदा जरूर हुआ कि मेरा इस इलाके में सम्पर्क बढ़ा और गाहे-ब-गाहे आना-जाना भी चलता रहा। यह विशेषकर गोष्ठियों के माध्यम से होता था जहाँ उनसे भेंट हो जाया करती थी। वह कबसे स्थायी तौर पर पटना में रहने लगे थे इसके बारे में मुझे कोई विशेष जानकारी नहीं है पर यहाँ कभी कभी उनसे भेंट हो जाया करती थी पर फोन पर हम लोग हाल-हाल तक बातें कर लिया करते थे। आखिरी बार मैंने उनको 28 नवम्बर को फोन किया था जब उन्होनें बताया था कि वह अभी सहरसा में हैं और जल्दी ही पटना जाने वाले हैं कि वहाँ की व्यवस्था दुरुस्त करेंगें। कुछ घर के किराये का भुगतान करना है, उसकी व्यवस्था कर देनी है। एक भांजी है जिसकी किसी सरकारी उपक्रम में नौकरी लगने वाली है। अगर यह हो जाता है तो वह अपनी बहन के यहाँ ही रहने के लिये चले जायेंगे।

इसके बाद उनके अवसान की दर्दनाक खबर ही मिली। नियति के हाथों हम सभी लोग कितने मजबूर हैं वह तो जाहिर हो गया। एक समाजकर्मी की मृत्यु इन परिस्थितियों में हो जाये कि किसी को पता ही न चले, यह कितने दुःख की बात है। सच है 'गुन ना हेरानों गुन ग्राहक हेरानों है।' उनकी कमी हमेशा खलती रहेगी। ■

रणजीव से जाना : नदी संस्कृति है, जीवन दृष्टि है

- ललन

नदी संस्कृति है, जीवन दृष्टि है, जीवन शैली है। नदी जन ही मूल निवासी हैं, जो इसकी कल कल छल छल के साथ अपनी प्रथम स्वांस पाते हैं और उसी की गोद में अंतिम स्वांस भी छोड़ जाते हैं। इस बीच की सारी जीवन लीला बहती नदियां देखती चलती हैं। सूर्य का टुकड़ा धरती अरबों वर्ष ठंढी होती हुई जीवन के लायक बनी तो नदियों का उद्भव कैसी परिघटना रही होगी, जरा अपनी कल्पनाओं को पीछे ले जाकर इस यात्रा को महसूसिए तो सही! आप नए उल्लास से भर जायेंगे!

आपको ऐसे देखने सोचने को कभी किसी ने बरबस प्रेरित किया? मेरे साथ ऐसा हुआ! एक सौम्य और गंभीर, किन्तु तनाव रहित व्यक्तित्व, सामान्य बिहारी वेश भूषा जींस टी शर्ट और गमछा, हाथ में अखबार, पत्रिकाएं। सामान्य ढंग से बातचीत में दोस्ताना पुट। उम्र और पहचान से निरपेक्ष किसी से, कभी भी संवाद कायम करने को तैयार। कोई चिंतक विचारक व्यक्तित्व ओढ़ने की जरूरत नहीं, किसी से गिला नहीं, पर कुछ तो करना है और लगातार करना है – ऐसा कोई साथी हो, आपको मिला हो, याद करिए ! वो रणजीव थे!

थे? अखर गया न! पर वे तो जाने अपनी मुहिम को कोई अलग मोड़ देने अकेले चले गए! मृत्यु सत्य है, ऊर्जा का एक संघनित रूप जो रणजीव था वह रूप बदल गया है पर नदियों की कल कल छल छल छोड़ कहां जा सकेगा। वो तो सुनाई देता रहेगा, महसूस कराता रहेगा।

सहरसा में कोशी कछार में पैदा बालक नदी की धड़कनों को माता के दुग्धदायी छाती के स्पंदनों की तरह महसूसता, कोशी के रौद्र रूप में भी जीवन को चेताता दुलारता नदी संदेश को समझते हुए प्रारंभिक पढ़ाई पूरा कर, फिर आगे पटना में छात्र जीवन जीता कब जन आंदोलनों का हिस्सा हो गया, कैसे हुआ सब कुछ उनके करीबी मित्रों परिजनों के पास अब संस्मरणों कहानियों के रूप में रह गई है। कुछ ने उन पर लिखा है, बहुत महत्वपूर्ण साथी आगे भी लिखेंगे। पर उन्होंने नदियों के साथ जीते समुदाय समाज के द्वंद और संघर्षों को अनेक पत्र-पत्रिकाओं, गोष्ठियों, सेमिनारों, शिविरों, कार्यशालाओं, एक्टिविस्टों और विशेषज्ञों की बैठकों में जिस तरह से व्यक्त किया है, वह नदी संस्कृति और उसके विरुद्ध षड्यंत्रों की सरल संप्रेषित संवेदित करने का दस्तावेज है – जिसे संजोने की जरूरत है।

जयप्रकाश आंदोलन में दीक्षित शिक्षित रणजीव स्वाभाविक था कि गंगा के अविरल बहाव और उसपर पलते मछुआ, किसान के जीवन संघर्ष के गंगा मुक्ति आंदोलन का हिस्सा बन गए और नदी संस्कृति वाली जीवन दृष्टि के व्यापक वैचारिक समूह में देशभर में सक्रिय हो गए। यह बहस व्यापक फलक लिए हुए है और हर प्लेटफार्म पर रणजीव की मौजूदगी रही। अनेक बैनर, बहुतेरे मंच, कितने ही नेतृत्व, अलग अलग नामों का महत्व है, पर उनका उल्लेख इस वक्त नहीं! पर रणजीव सबके साथ बराबरी से सक्रिय रहे।

रणजीव की आंखें सदा उन्हें पहचान लेती जो उनके वैचारिक हमसफर हो सकते थे, बुद्धिजीवी, पत्रकार, कलाकार, रंगकर्मी, साहित्य-कविता को जीनेवाले, छात्र, नौजवान, उत्साही महिलाएं और संस्थायें जिनमें भी समझने की ललक हो। मुनाफे के सौदागरों से उनकी कभी नहीं बनी चाहे वे एनजीओ करने वाले कथित स्वयंसेवी क्यों न हो। और व्यापारियों से उनका क्या लेना देना जिसने फाकेमस्ती को ही जीवन बना रखा हो सिर्फ और सिर्फ नदी, पर्यावरण और जनजीवन की बेहतरी के वास्ते! नदी संस्कृति है और इसे नष्ट कर देने की प्रवृति - प्रक्रिया का सहज पर्दाफाश करना ही लक्ष्य!

उनकी अपनी आदतें थीं, उन्हें पसंद थीं अस्त व्यस्तता और बेपरवाही। कई मित्रों, स्वजनों को इससे शिकायतें थीं, पर कभी ऐसा नहीं सुना जो उनसे नफरत करता हो। उनसे जो संभव, बिना किसी अपेक्षा के मदद करते। उनकी जरूरतें पूरी करने में मित्रों ने कभी आनाकानी की हो, ऐसा भी नहीं। उनकी जरूरतें क्या, दो सेट कपड़े, खाना और पढ़ने लिखने की सुविधाएं और यात्रा व्यय। मैंने उनके स्वजन संबंधियों के बारे में कोई खास नहीं जाना, कभी उन्हें इन बातों का जिक्र करते सुना भी नहीं। शायद उनके हमसफर की बड़ी जमात को वे अपना मानते थे। उन्हें किस से कोई शिकवा गिला था, ऐसा लगा नहीं! हां, पारिवारिक झंझटों से मुक्त रहना उन्हें पसंद था।

अध्ययन की गहराई और प्रस्तुतिकरण वरिष्ठ पत्रकार एक्टिविस्ट साथी श्री हेमंत के साथ मिलकर किए गए काम "जब नदी बंधी" (प्रकाशन जयप्रभा अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्र) से ही मिल गया था जब वे छात्र युवा संघर्ष वाहिनी के एक्टिविस्ट समूह से गंगा मुक्ति आंदोलन की अग्रिम पंक्ति में नजर आने लगे थे। जयप्रकाश आंदोलन के महत्वपूर्ण बुद्धिजीवियों,

नेताओं, एक्टिविस्टों की जमात तब पूरी दुनिया के लिए सस्टेनेबल डेवलपमेंट के व्यवहारिक खाका पर बहस कर रहे थे। जल्दी ही रणजीव देश भर की ऐसी जमातों के हिस्सा बनते गए थे। और, अंत तक कभी अलग नहीं हुए।

उनका जीवन ऐसे समाप्त हुआ कि किसी को बंद कमरे से सड़ जाने की दुर्गंध के पहले भनक तक नहीं लगी, जबकि उन्हें चाहने, प्यार व सम्मान करने वालों की कमी नहीं थी – कसक लगने की बात जरूर है। सामाजिक जीवन के लिए अनेक प्रश्न तो खड़े करता ही है, पर नदी संस्कृति की पैरोकारी के लिए तो गंभीर चुनौती है। 90 के दशक से ग्लोबलाइजेशन से आई संवेदनशीलता के क्षरण और परस्पर सूचनाहीनता से साथियों में बढ़ते अकेलेपन को भी जताता है। बिना किसी शिकवा रणजीव का यों चले जाना जबरदस्त बेचैनी तो देता है पर यह रणजीव को सदा आस पास मौजूद होने का एहसास भी कराता रहेगा। हमें काम को आगे बढ़ाते ही जाना होगा। चेतावनी कि जल जीवन और समाज पर चौतरफा हमले बढ़ रहे हैं! ■

नदी और समाज के सच्चे साधक थे रणजीव!

- महेन्द्र यादव

उनसे मेरी पहली मुलाकात पटना के बाढ़-सुखाड़ अभियान के कार्यालय में वर्ष 2007 में हुई। मैं वहां विजय भाई से मिलने गया था। सूचना अधिकार के कार्य से पटना रहना शुरू ही किया था। उस समय जन आंदोलनों के राष्ट्रीय समन्वय (NAPM) के नेता विजय भाई थे। मैं NAPM से पहले ही जुड़ा था। उन्होंने एक अजनबी से व्यक्ति से परिचय कराया-नाम था रणजीव कुमार। मेरे लिए वह एक सामान्य सा परिचय था। उनका अक्खड़ स्वभाव पहली बार में दिखा और मैं निजी तौर पर प्रभावित नहीं हुआ। 2008 की कुसहा त्रासदी के समय उनका नाम खूब सुना, परन्तु मिल नहीं पाया। संयोग ऐसा हुआ कि मुझे मेधा पाटकर ताई पटना से साथ लेकर पूर्णिया आ गयी। मैं थोड़े दिन वहाँ रहने के बाद, मधेपुरा जिले के बिहारीगंज प्रखंड अंतर्गत बभनगामा रहने लगा। वह क्षेत्र जिला मुख्यालय से कट गया था और मधेपुरा या सहरसा आने के लिए पूर्णिया से कटिहार फिर मानसी वहां से ट्रेन से सहरसा आना होता था। दो मुख्य सेंटर कार्यरत थे एक पूर्णिया और दूसरा सहरसा। रणजीव जी सहरसा सेंटर के माध्यम से मधेपुरा सहित सभी क्षेत्रों को देखते थे। भौगोलिक दुरूह क्षेत्र के कारण मिलना नहीं हुआ था। वर्ष 2011/12 में कुसहा त्रासदी के पीड़ितों के सवालों को उठाते हुए बीरपुर से बिहारीगंज तक की कोशी जन सम्वाद यात्रा हमलोग किए जिसमें रणजीव जी पूरी यात्रा साथ रहे। दर्जनों नुक्कड़ सभाओं में बोले। आपसी चर्चा में उनके द्वारा चल रहे साथियों का प्रशिक्षण रास्ते में होता रहा। उसके समापन में राजेन्द्र सिंह जी भी आये और इस मुद्दे को पटना में हमलोग उठवाने में कामयाब रहे। यात्रा के दौरान साथ चल रहे उदघोषक साथी ने सभा पूर्व कह दिया कि हमारे बीच नदी नालों के विशेषज्ञ रणजीव जी आ रहे हैं। यह सुनकर मणिलाल जी इसे भांप लिए मुझे बताए हमलोग उदघोषक साथी को समझाए कि कुसहा कटान की जाँच के लिए एक न्यायिक जाँच आयोग बना था उसपर जनदबाव बनाने में वे साथ रहे। कोशी त्रासदी 2008 के पीड़ितों के पटना में आयोजित जन सुनवाई में वे एक जूरी मेम्बर थे। मैं उनके और विजय भाई के साथ भारत नेपाल के कोशी पर कार्य करने वाले नागरिक संगठनों के सिमराही

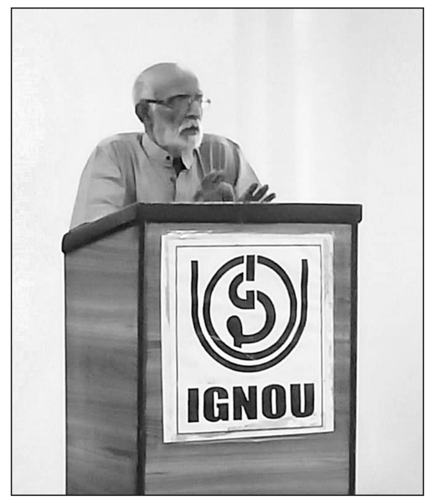

मीटिंग और इटहरी में साथ रहा। 2016 में हमलोग कोशी के व्यापक सवालों पर सहरसा में चिन्तन बैठक हमने आयोजित किया। उसमें स्व० रणजीव जी और स्व० विमल भाई अतिथि थे। उस चिन्तन बैठक में उनका कहना था कि कोशी नव निर्माण मंच को सिर्फ एक एजेंडा उठाना चाहिए – कोशी तटबंधों को खत्म करो, उसे तोड़ दो। कुछ साथी उनके साथ थे पर मैं उसके पक्ष में नहीं था। इसका कारण दो था एक मैं कोशी क्षेत्र या बिहार का नहीं हूँ जिसके कारण इस तरह के अभियान का नेतृत्व नहीं कर सकता दूसरा की मैं तटबंध के भीतर सुरक्षा बांध बनने से सुरक्षित लोगों से मिला

था, वे लोग तटबंध के भीतर परन्तु सुरक्षा बांध के कारण नदी की बाढ़ से सुरक्षित होने के बाद तटबंध काटने के विरोध में थे। एक और तर्क मेरा था कि यदि नदी तटबंध के बीच की बालू भरी जमीन से दूसरे स्थान पर चली जाएगी तो यह क्षेत्र रेगिस्तान की तरह न हो जाए। खैर, मेरी एक नहीं सुनी गयी और बहुमत रणजीव जी के पक्ष में झुकने लगा। मधेपुरा से आये साथी थोड़ा निराश होने लगे। मैंने कहा ठीक है आप इस आन्दोलन का नेतृत्व कीजिए। हम सभी लोग साथ रहेंगे। इस पर वे राजी नहीं हुए। कोशी पर अनेक आन्दोलन हुए हैं और आगे भी होंगे। कोशी के लोग उसकी अगुआई करें मैं सहयोगी रहूँगा इसी सिद्धांत पर हमलोग चलते हैं। अंतिम में तय हुआ कि हमलोग तटबंध के भीतर लोगों को जोड़ने के लिए बिना विवाद के मुद्दों पर काम शुरू करेंगे और लोगों के बीच आन्दोलन की पूर्व पीठिका तैयार करने में भूमिका निभाएंगे। यही चल रहा है। उस समय का एक रोचक प्रकरण याद आ रहा है जब हम लोग एम. एल. टी. (सहरसा) कालेज के गेट पर आये तो कार्यक्रम का बैनर गायब था। रणजीव जी बहुत नाराज हुए और मुझ पर थोड़ा गुस्साए और पूछा बैनर क्या हुआ? मैंने कहा कोई उतार लिया होगा या गिर गया होगा। वे मीटिंग में नहीं गये। बोले सहरसा में हम लोगों का बैनर कोई खोल लेगा यह कैसे हो सकता है? मैंने मनाने की कोशिश की परन्तु वे नहीं माने और वहीं रुक गये। हमलोग अगले सत्र की चर्चा शुरू किए ही थे कि थोड़ी देर बाद आये और बोले कि आप लोगों से कुछ नहीं होगा। बैनर चाय वाला खोला था मैंने हड़काया और उससे ही पुनः लगवा दिया।

जब हमलोग सुपौल जिले में कार्य शुरू किए तब युवा-युवती प्रशिक्षण शिविर बी.आर.सी. स्कूल में आयोजित हुआ। बहुत शानदार शिविर हुआ था। उसमें नदी, पानी, पर्यावरण के सवालों को रणजीव जी सैकड़ों युवाओं को समझाये। उसके बाद बोले कि सामने तालाब है जो गंदा है। यदि वास्तव में आप लोग पर्यावरण के प्रति गम्भीर हैं, तो इसे साफ कर दीजिए। हमलोग हामी भर दिए परन्तु दिन भर सत्र चलाते रहने के कारण भूल गये। अगले दिन की सुबह जब वे गन्दा तालाब देखे तो विफर पड़े, बोले नाश्ता नहीं करूंगा। हमलोग मनाये और वचन दिया। दोपहर भोजन के पहले साफ हो जायेगा। हम सभी साफ़ करने उतरे, सुंदर सफाई की गयी। कोशी तटबंध के भीतर लगान मुक्ति कोशी जन सम्वाद यात्रा निकली तो समापन में बैरिया मंच में वे आये और साथियों का हौसला अफजाई की। मैं कोशी पीड़ित विकास प्राधिकार के बारे में सुना था उसकी कॉपी निकलवाने के लिए किसी मित्र की पैरवी से पटना सचिवालय के सिंचाई भवन में घूम रहा था। वह रिपोर्ट नहीं मिल रही थी। उसी समय उनका फोन आया। मैंने उन्हें बताया कि मैं इस कार्य में हूँ। उसके बाद बोले यह दस्तावेज मेरे पास भी होना चाहिए। मैंने कहा ठीक है मैं आता हूँ। सुपौल में आयोजित सम्मलेन में कोशी पीड़ित विकास प्राधिकार के कागजात लेकर आये। वह कागज मिलने के बाद ही हमलोग इस मुद्दे को जोरदार तरीके से उठाने लगे। कोशी महा पंचायत का आयोजन सुपौल में हुआ तो वे उसमें अतिथि के रूप में विशिष्ट वक्ता थे। कोशी पीपल्स कमीशन बना तो वे उसके सम्मानित सदस्य थे। हालाँकि कुछ मित्रों से अपनी नाराजगी जाहिर की थी। इसमें बाहरी लोग ज्यादा हैं। कोशी के स्थानीय लोग और होने चाहिए। हमलोग उसे गठित करते समय यह सोचे थे कि देश के प्रसिद्ध और शोध के लोगों को साथ रखने से अपनी मांगों को बल मिलेगा और उसकी रिपोर्ट को निरपेक्ष माना जायेगा। कोशी के लोग तो इन मांगों को लेकर संघर्ष कर ही रहे हैं। इसे स्पष्ट करने का अवसर ही नहीं मिला है। पुस्तक मेला में कोशी पर कार्यक्रम का आयोजन हुआ उसमें वे मुख्य वक्ता के रूप में थे। पटना के एन एन सिन्हा में सेमिनार की अध्यक्षता ग़ालिब जी, निशा झा जी के साथ संयुक्त रूप से किए। कोशी नव निर्माण मंच के लोग उन्हें अभिभावक की तरह मानते थे और पूरा आदर था। सामर्थ्य के मुताबिक सहयोग निभाने की कोशिश भी हुई। सत्याग्रह पद यात्रा की घोषणा के बाद मैं सहरसा में उनसे दो बार मिला था। साथ में बहुत चर्चा हुई। मन की दुविधा को बताया कि एक बाहरी होने का दंश मुझे बार-बार झेलना पड़ता है। लोग मुद्दे से भटकाने की कोशिश करते हैं। इस पर क्या किया जाए? उनका उत्तर था कि आन्दोलन तेज होगा तो ऐसे बिना सिर पैर के मुद्दे गायब हो जायेंगे। बहेड़ा कालेज में अंतराष्ट्रीय नदी पानी और पर्यावरण पर मीटिंग थी। मैं उन्हीं के कहने पर गया था। कार्यक्रम समापन होने के पूर्व सत्र में मैं पहुंचा था। अजीत मिश्रा जी संचालन करते हुए मेरे परिचय में कुछ अधूरा बताए तो मंच पर बैठे रणजीव जी उनसे माईक लेकर पूरा परिचय दिए। वहीं से दरभंगा के साथियों ने उनसे दरभंगा रहने का आग्रह किए और वे रहने लगे। सत्याग्रह पदयात्रा का फोन पर ही हालचाल लेते रहे। मैं उन्हें समापन में आने को कहा तो बोले स्वास्थ्य ठीक नहीं है। यहाँ के साथी इलाज करा रहे हैं। मैंने कहा ठीक है। यात्रा पूरी होने पर बहुत खुश थे। हमलोग भी दरभंगा में साथियों और रिश्तेदार के यहाँ रहते देख कर थोडा निश्चिन्त थे। पर पटना उनके आने की भनक भी नहीं लगी और यह घटना हो गयी और वे अलविदा कह गए। इसका ताउम्र अफ़सोस रहेगा। ■

रणजीव का जीवन: एक सबक़ भी और सवाल भी

- योगेन्द्र

रणजीव के फ़ेसबुक वॉल पर जाइए तो उनकी प्रोफ़ाइल पर जो पहली पंक्ति लिखी मिलेगी, वह है - 'प्रवाह ही जीवन है।' यह सच है , जीवन तो प्रवाह में ही है, लेकिन अंतिम समय में रणजीव के जीवन में प्रवाह नहीं था। जो व्यक्ति विभिन्न आंदोलनों में सक्रिय रहा। 'जब नदी बंधी' जैसी पुस्तक का संयुक्त संपादक/ लेखक रहा, वह बुरी तरह से ठहर गया। क्षत- विक्षत हुई लाश को देखना क्या कम पीड़ादायी था? वे कब मरे, कैसे मरे, कुछ भी कहना मुश्किल। कई दिनों के बाद उनके कमरे के दरवाज़े तोड़कर उनकी लाश निकाली गयी। मेरी उनसे कई बार मुलाक़ात हुई। हर बार मुस्कुराते ही मिले। चेहरा पर कोई तनाव नहीं, न किसी तरह के अहं भाव। मैंने कभी यह भी नहीं देखा कि किसी सभा सोसायटी में माइक पर जाकर बोलने की कोई ख्वाहिश हो। लटके - झटके तो उनके जीवन को छू तक नहीं गया था।

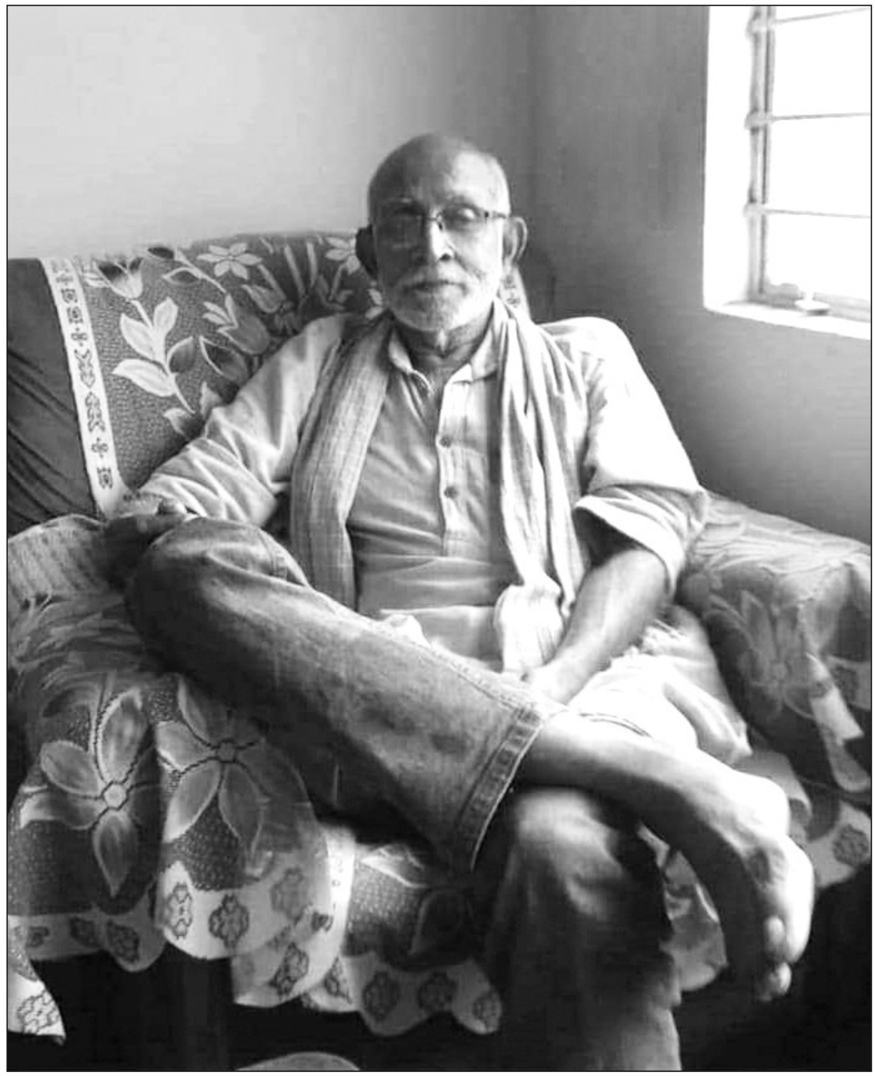

संयुक्त रूप से संपादित पुस्तक 'जब नदी बंधी' नदियों को बांधने के खिलाफ ही रची गई। प्रवाह ही जीवन है, मनुष्य के लिए भी, नदी के लिए भी और जीव जंतुओं के लिए भी। प्रवाह का रूकना जीवन की समाप्ति की ओर ही संकेत है। रणजीव बँधे नहीं, रिश्तों में। परिवार में थे, लेकिन उन्होंने शादी नहीं की। पहली जनवरी 1955 को जन्मे रणजीव के पास बौद्धिक ताक़त तो थी ही, संघर्ष करने की भी ताक़त थी। बोधगया भूमि मुक्ति आंदोलन में थे और गंगा मुक्ति आंदोलन में भी। 1974 के छात्र आंदोलन में तो थे ही। 1974 के छात्र आंदोलन से निकले हैं, आज के ज़्यादातर नेता। अभी कोई मुख्यमंत्री हैं, कोई मंत्री हैं। लेकिन छात्र आंदोलन जिन कारक तत्वों के आधार पर हुआ था, वे आज भी क़ायम हैं, बल्कि उससे भी भद्दी स्थिति में है। भ्रष्टाचार का मामला हो या शिक्षा का। लोकतंत्र के सिकुड़ने का मामला हो या उपभोक्तावाद का। नागरिक के सर पर चढ़ कर बोल रहा है। छात्र आंदोलन से दो धाराएँ निकलीं- एक संसदीय राजनीति में विलीन हो गयीं और दूसरी निर्दलीय होकर विभिन्न आंदोलनों में लगीं। इसी से एक क्षीण धारा एनजीओ की ओर मुड़ी। रणजीव निर्दलीय रहे और विभिन्न आंदोलनों में अपनी भागीदारी निभाते रहे।

देश या समाज कई स्थल पर चूक जाता है और अपनी प्रतिभा का बेहतर इस्तेमाल नहीं कर पाता। रणजीव प्रतिभाशाली थे और मुझे लगता है कि वे अगर लेखन में लगे रहते तो अपने साथ समुचित न्याय करते। उनके फ़ेसबुक वॉल पर जाइए तो उन्होंने यदा कदा ही अपनी बात लिखी है।

ज़्यादातर वे साथियों की टिप्पणी/ लेख को शेयर करते थे। यों शेयर करने में भी उनकी वैचारिक प्रतिबद्धता दिखती ही है, लेकिन उनके अंदर के आलोड़न को पूरी तरह व्यक्त नहीं करते। फ़ेसबुक वॉल पर जब भी उन्होंने टिप्पणी की तो बहुत संक्षिप्त। उनकी कुछ पंक्तियाँ देखिए –

5 नवम्बर 2017- पीत पत्रकारिता/ भगवा पत्रकारिता के अगुआ रहे जागरण का संपूर्ण बहिष्कार करें।

19 अप्रैल 2018 - अनौपचारिक वार्ताओं का क्या है रहस्य? क्या इससे राष्ट्रभक्ति संदिग्ध नहीं होती।

29 अप्रैल 2018 - जनता के पैसे का दुरुपयोग कर विज्ञापनों पर टिकी है भाजपा सरकार - संदर्भ नई दुनिया 26 अप्रैल जो कुल 24 पृष्ठ में छपा और 23 पृष्ठ में विज्ञापन था।

29 अप्रैल 2018 - राष्ट्र के कामकाज में शामिल होना ही असली राष्ट्रप्रेम है।

11 मई 2018 - लालू जी को अन्यायपूर्ण प्रतिबंधों के साथ तीन दिनों का पैरोल देना भाजपा की गंदी राजनीति है।

13 मई 2018 - देश का हर आदमी अपनी दैनिक गतिविधियों में हर पल कार्बन फुटप्रिंट कम करने का ज़रूरी पहल नहीं करेगा तो वह खुद जलेगा और दूसरों को भी जलायेगा।

17 मई 2018 - कांग्रेसियों! कोर्ट छोड़ सड़क पर उतरो, जनता का साथ लो। लोकतंत्र सड़क पर मिलेगा।

18 मई 2018 - आनेवाले दिनों में इस क़ानून के मद्देनज़र आपकी व्यक्तिगत निजता गिरवी हो जायेगी। *संदर्भ- डीएनए प्रोफ़ाइल बिल*

22 मई 2018 को रणजीव ने कई पोस्ट लिखे- छोटे - छोटे।

पहला - आदरणीय मुख्यमंत्री जी, इतिहास संजोने से वर्तमान समृद्ध नहीं होता। बिहार को वर्तमान की समृद्धि चाहिए।

दूसरा - यह सभ्यता - द्वार नहीं, जनता के पैसे की फ़िज़ूलख़र्ची असभ्यता - द्वार है। यह सत्ता का अहंकार भी है।

तीसरा - आज बुज़ुर्ग दिवस है पर फ़ेसबुक पर उनके लिए लोगों का पोस्ट नदारद है। यह प्रमाण है कि आज के समाज के लिए बुज़ुर्ग अर्थहीन हो गये हैं।

चौथा - आज जैव विविधता दिवस भी है पर दुनिया की एक जैसी विकास की भेड़ चाल हर रोज़ पृथ्वी की विविधता समाप्त करती जा रही है।

14 जून 2018 - कश्मीर में पत्रकार शुजात बुख़ारी की हत्या कश्मीर में अमन के प्रयासों की हत्या है। केंद्र व राज्य सरकारें इस निर्मम हत्या की ज़िम्मेवार है।

19 जून 2018 - कश्मीर में अपनी मनमानी चलाने और 2019 के आम चुनाव में तीव्र ध्रुवीकरण के लाभ की पूर्व तैयारी हेतु बीजेपी ने कश्मीर सरकार को गिराया है।

ऐसे पोस्ट रणजीव के नज़रिए को स्पष्ट करते हैं। वे पार्टी ओरियेंटेड पत्रकारिता के आलोचक थे, जो झूठी खबरों के माध्यम से कलही राजनीति स्थापित करती है। वे पर्यावरण को लेकर चिंतित हैं। वे कोशी क्षेत्र से आते थे, जहाँ कोशी का तांडव हर वर्ष होता है। इसलिए उनके जीवन के केंद्र में पर्यावरण रहा है। जैव विविधता को लेकर भी वे चिंतित होते हैं और नदियों पर आसन्न ख़तरे को लेकर भी। आज निजता का कोई अर्थ नहीं रह गया है। हर व्यक्ति की निजता ख़तरे में है। रणजीव निजता के पक्षधर रहे। मुख्यमंत्री नीतीश कुमार छात्र आंदोलन से ही निकले हैं। उनसे समृद्ध बिहार के निर्माण की उम्मीद थी। जब यह उम्मीद टूटने लगी तो रणजीव ने टिप्पणी की - इतिहास संजोने से वर्तमान समृद्ध नहीं होता। वर्तमान को समृद्ध बनाने के लिए वर्तमान की समस्याओं से जूझना होगा। सत्ता में जो पहुँचता है, वह जनता के पैसे को पानी की तरह बहाता है। रणजीव को यह सब एक असभ्य तरीक़ा लगता था। उनकी चिंता के केंद्र में अगर बिहार था तो वे कभी देश और विश्व को नहीं भूले। उनके द्वारा शेयर किए गए सैकड़ों पोस्ट इस बात की गवाही देते हैं।

रणजीव से मैं मिलता रहा हूँ। फ़ोन पर भी बातचीत होती रही है। जब भी मिले तो मुस्कुराते हुए मिले – दुबली पतली देह, पकी दाढ़ी और हँसता हुआ मुखमंडल। जब मैं बिहार विधान परिषद का चुनाव लड़ रहा था तो उसका फ़ोन आया। वे जानते थे कि मैं वेतन और पीएफ के पैसे से लड़ रहा हूँ। सामने जो उम्मीदवार है, वह अकूत धन और मज़बूत सामाजिक परंपरा वाला है। उससे मैं कैसे पार पाऊँगा? पार पाना संभव नहीं था, लेकिन मैं अपनी ज़िद पर अड़ा था। उन्होंने मुझे कभी निराश नहीं किया, लेकिन हक़ीक़त बताते रहे। अब वे हैं नहीं। उन्होंने अपना अंतिम समय उपेक्षित होकर बिताया। समाज भी आज निःस्वार्थ सेवक को समुचित सम्मान नहीं देता। उसे तो लकदक करता हुआ शख़्स चाहिए, जो उसे ठग भी ले तो कोई बात नहीं। रणजीव का जीवन सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए एक सबक़ भी है। इस सबक़ के पाठ को पढ़ कर सामाजिक कार्यकर्ता को अपने जीवन की व्याख्या करनी चाहिए।

निर्दलीय होकर समाज में काम करना जोखिम उठाना है ही, लेकिन जोखिम उठाने का माद्दा भी इंसान के पास ही है। रणजीव में यह माद्दा था और उन्हें इस बात के लिए याद किया जाता रहेगा। ■

जब नदी बंधी वाले रणजीव

-पुष्यमित्र

उत्तर बिहार की बाढ़ में 'दशहरी' धान सी जिजीविषा और दक्षिण बिहार की सुखाड़ में 'शाल' वृक्ष-सा साहस लिए संघर्षरत मानव को समर्पित।

यह उस किताब की समर्पण की पंक्तियां हैं, जिसकी तलाश मैं 2008 से ही कर रहा था। यह बात मैंने इस किताब के लेखक रणजीव जी से भी कही थी। मगर उन्होंने हर बार यह कहते हुए टाल दिया कि अरे होगी कहीं रखी हुई। कभी घर आइये तो ले लीजियेगा। आखिरकार वह किताब मुझे पटना में उनके लिए आयोजित श्रद्धांजलि सभा में मिली, जब उनके निधन के दो हफ्ते गुजर चुके थे। और उनके घर मैं पहली बार इस सभा के अगले दिन गया, जब यह तय हुआ कि उनके किताबों-कागजों की भीड़ में कुछ काम की चीजें तलाशी जायें। किताबें किसी पुस्तकालय को दे दी जाये और लेखन में जो काम का हो उसके किताब की शक्ल दी जाये।

बहरहाल पहले उस किताब की बात, जिसका नाम है – 'जब नदी बंधी'। जिस किताब को रणजीव जी ने जाने-माने पत्रकार हेमंत जी के साथ मिलकर लिखा था। उस श्रद्धांजलि सभा में जिसमें मुझे यह किताब वक्ताओं की मेज पर रखी दिखी, वहीं मैंने उसे उलट-पुलट कर देखना शुरू कर दिया। किताब को देखते ही समझ आ गया कि यह बिहार और झारखंड की नदियों को समझने के लिए एक जरूरी किताब है। कोई भी बिनगर इस 162 पन्ने की किताब को पढ़कर बिहार की बाढ़ और सूखे के कारणों को समझ सकता है। हालांकि यह इतनी सरल किताब भी नहीं है।

बहुत मेहनत से बिहार-झारखंड की 51 नदियों के बारे में आंकड़े जुटाकर इस किताब को तैयार किया गया। दोनों राज्य में बाढ़ नियंत्रण, सिंचाई और बिजली उत्पादन के नाम पर नदियों को बांधने के उपायों की सच्चाई उजागर की गई है। इसलिए इस किताब का नाम रखा गया, जब नदी बंधी। नदी को कहीं तटबंध बनाकर बांधा गया, कहीं डैम बनाकर तो कहीं बराज के फाटकों के पीछे। यह मुझे एक ऐसी किताब लगी, जो ऐसे जटिल विषय को पेश करती है, जिसे आम लोग समझ नहीं सकते। मगर उसने अपनी भाषा और प्रस्तुति में सहज और रोचक बना दिया है।

उस वक्त तक्षण मेरे दिमाग में यह ख्याल आया कि यह किताब उन शोधार्थियों के लिए बड़े काम की हो सकती है, जो उत्तर बिहार की नदियों, बाढ़ और पलायन के विषय पर लगातार शोध करते हैं। मेरे पास हर साल ऐसे लोगों के फोन आते हैं। मैं उन्हें उत्तर बिहार की नदियों पर सबसे प्रामाणिक काम करने वाले आदरणीय दिनेश मिश्र जी की कई किताबों के नाम बताता हूं। अक्सर वे कहते हैं, क्या कोई एक किताब ऐसी है, जिससे सारी बात समझ में आ जाये। ऐसे में मैं सोच में पड़ जाता हूं। लेकिन अब यह एक ऐसी किताब है, जिससे आप नदियों से जुड़े सभी किस्म के सरकारी अपराधों को एक बार में समझ सकते हैं।

इस किताब को पाकर मैं सोच में पड़ गया कि रणजीव जी आखिर अपनी इस किताब का लोगों से जिक्र क्यों नहीं करते थे। मैंने मांगा, मगर उन्होंने किताब दी नहीं, टाल गये। मुझे कई बार ऐसा लगता है कि अगर इस एक किताब का ढंग से प्रचार होता तो वे देश भर में नदी के एक्सपर्ट के रूप में जीवन भर बुलाये जाते। मैं जानता हूं कि इस किताब के प्रकाशन में कई लोगों का हाथ रहा है। मधुपुर की संस्था जयप्रभा अध्ययन एवं अनुसंधान केंद्र ने इसे बहुत सुरुचिपूर्ण तरीके से छापा है। इसका वितरण भी हुआ होगा। इसके एक अन्य लेखक हेमंत जी हैं।

इसके बावजूद यह भी सच है कि रणजीव जी इस किताब के प्रमुख रचनाकार हैं। नदियों पर काम ही उनके जीवन का केंद्रीय तत्व है। एक संस्था के वितरण की अपनी सीमा होती है, अगर इस किताब को किसी बड़े प्रकाशन संस्था ने छापा होता तो इसका बड़े पैमाने पर प्रचार होता, हमेशा देश भर की दुकानों पर और अब ऑनलाइन यह किताब उपलब्ध होती। इसकी चर्चा का फलक भी बड़ा होता।

मगर रणजीव जी ने उस रास्ते को नहीं चुना। घनश्याम जी जो एक तरह से इस किताब के प्रकाशक हैं, ने बताया कि हाल के दिनों में उनकी रणजीव जी से इस किताब को अपडेट करने और इसे फिर से छापने की योजना पर बात हो रही थी। रणजीव जी के निधन की वजह से काम अटक गया।

शोकसभा के अगले दिन जब मैं उनके कमरे पर पहुंचा तो उनके बारे में कई भ्रम टूटे। आखिरी दिनों में रणजीव जी के बारे में यह चर्चा खूब होती थी कि वे अभावों में रहे। शोकसभा में तो इस तरह की सूचनाओं की बाढ़ आ गई थी।

मगर उनके कमरे पर मिली दो चीजें चौकाने वाली थी। एक 12 हजार या 18 हजार का चेक था, राशि मुझे याद नहीं। चेक 2012 का था। किसी संस्था ने उन्हें किसी काम के एवज में दिया होगा। वह चेक उन्होंने भुनाया नहीं था। ऐसे पड़ा था। इसके अलावा पैंट, शर्ट, स्वेटर और जूतों की कई जोड़ियां बिल्कुल नई, एक बार भी जिनका इस्तेमाल नहीं हुआ। उसके घर में ऐसे ही पड़ी थी। महंगे कपड़े। खरीद लिये, मगर इस्तेमाल नहीं हुए। किताबों, अखबारों, पत्रिकाओं का तो भंडार था। एक पत्रकार के तौर पर मैं भी इतने अखबार, पत्र-पत्रिकाओं को नहीं पढ़ता, जितना वे पढ़ते थे। देश विदेश की पत्रिकाएं, पर्यावरण की पत्रिकाएं। कई चर्चित किताब उनकी आलमारी में मिली।

नहीं मिला तो रसोई का एक भी बरतन। चाय तक का बरतन नहीं मिला। अगर किसी गट्ठर में बंधा हो तो अलग बात। उनकी फाइलों में कई संस्थाओं के कागजात थे। कई संस्थाओं ने उनसे पर्यावरण के विषयों पर लंबे आलेख लिखवाये थे या प्रोजेक्ट रिपोर्ट बनवाये थे। वे सारे रिपोर्ट महत्वपूर्ण हैं, क्योंकि उनमें उनका अनुभव, अध्ययन और ज्ञान है। ब्रह्मपुत्र नदी पर उनका गंभीर काम दिखा।

इन दो दिनों में मैं उनको ठीक से जान पाया। इससे पहले मेरा उनसे वैसा परिचय नहीं था। हम एक दूसरे को पसंद करते थे। वैचारिक रूप से एक जैसे थे। अक्सर पटना शहर के आयोजनों में उनसे मेरी मुलाकात होती। उन मुलाकातों में उनके साथ अक्सर पत्रकार अमरनाथ जी हुआ करते। नदी और पर्यावरण की खबरों में जब किसी विशेषज्ञ की टिप्पणी की जरूरत होती, तो मैं उन्हें फोन लगा लेता। कई लोगों का कहना था कि वे बहुत जल्द नाराज हो जाते थे, मगर मुझसे कभी नाराज नहीं हुए। कई दफा वे खुद भी फोन लगा लेते थे। ऐसा ही संबंध था। जाना उनके जाने के बाद। और इस जानने में उनकी किताब जब नदी बंधी की बड़ी भूमिका रही। इसलिए यह संस्मण भी इस किताब पर ही फोकस है। ■

पर्यावरण के रण में रणजीव